साधना में आहार का स्थान

☐ ऋषभदास रांका

आत्मा में परमात्मा बनने की क्षमता है। आत्मा की सुप्त शक्तियों का विकास कर नर से नारायण बना जा सकता है। साधना द्वारा चैतन्यशक्ति पर आये हुए आवरण हटाने का अनावृत करने का प्रयत्न करने से परमात्म-पद की प्राप्ति हो सकती है।

आत्मा पर कर्मबंध के कारण चैतन्यशक्ति पर जो आवरण छाया हुआ है उसे दूर करने के लिए अन्तर् की गहराइयों में जाकर उन शक्तियों से परिचित होना, ढूँढ़ना और उन शक्तियों का नियमित उपयोग लेना।

उसके लिए अन्तर्मुख होना आवश्यक है। स्थूलशरीर को सब कुछ मानकर बाह्य प्रवृत्तियों में लगना बहिर्मुखता है। किन्तु इस शरीर में व्याप्त जो चैतन्य शक्ति है उस ओर ध्यान देना अन्तर्मुखता है।

शरीर को सब कुछ न मानकर उसके द्वारा चैतन्यशक्तियों का विकास साधना द्वारा किया जाता है। संसार की शक्तियों की अभिव्यक्ति और प्रकटीकरण इस शरीर द्वारा ही होता है। इसलिए चैतन्यशक्ति का प्रकटीकरण शरीर के सहयोग से ही होता है। इसलिए शरीर की उपेक्षा नहीं की जा सकती। आत्मविकास में शरीर को समझना भी उतना ही आवश्यक है, जितना आत्मा को समझना। शरीर को भलीभाँति समझे बिना, उसका हम उचित उपयोग नहीं कर सकते।

शरीर को सब कुछ मानकर इन्द्रियों द्वारा विषय-सुख प्राप्ति में लगना जैसे साधना में बाधक है वैसे ही शरीर की पूर्णरूप से उपेक्षा भी आत्मविकास में बाधक है। इसलिए उसका उचित स्थान समझना और उसका चैतन्य-शक्ति को अनावृत करने में उपयोग कर लेना आवश्यक है।

जब हम शरीर को सब कुछ मानकर उसमें मूर्च्छित होते हैं वह बहिर्मुखता है तथा मैं केवल शरीर ही नहीं हूँ, मेरे शरीर के भीतर जो चैतन्यशक्ति है, उसकी अनुभूति करना अन्तर्मुखता है।

बाह्य-शरीर को ही सब कुछ मानकर सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी आदि द्वन्द्वों को वास्तविक मानकर चलना बहिर्मुखता है। शरीर को ही सब कुछ मान लेने पर राग-द्वेष, अहंता-ममता, ईर्ष्या-घृणा, संकल्प-विकल्प की परिणतियाँ होती हैं, हम उन्हें अपना मानकर चलते हैं तो शरीर हमारी साधना में बाधक होता है। लेकिन इस मूर्च्छा से जागकर हमें वीतरागता तक पहुँचना है और यह कार्य शरीर के सहयोग से ही होता है। सिर्फ हम उसे वह जैसा है समझें, जरूरत से ज्यादा उसे महत्व न देकर उसका उपयोग अपने पूर्ण विकास के लिए कर लेते हैं तो शरीर को सार्थक बना सकते हैं।

कई साधकों ने शरीर को नरक का द्वार और बुरा माना है, उसकी उपेक्षा करने को कहा है तो कुछ ने उसे प्रभु का मन्दिर मानकर, उसका निवासस्थान समझकर वन्दनीय माना है।

शरीर को निन्दनीय माने वैसा तो नहीं है क्योंकि वही तो हमारी सारी शक्तियों का, चैतन्य-रश्मियों का वाहक है। आत्मा से परमात्मा बनने का साधन तो यह मानव-शरीर ही है। संसार में जितने भी महापुरुष सिद्ध, बुद्ध, तीर्थंकर, जिन, अवतार, पैगम्बर हुए सभी मानव-शरीर में ही हुए हैं। सिर्फ सवाल यह है कि हम उसका कैसे उपयोग करें।

भगवान महावीर के साधना-मार्ग में भी शरीर का महत्व बताया गया है, उसकी उपेक्षा नहीं। उत्तम संहनन के बिना ध्यान नहीं होता यह कहा गया है, इसलिए साधक को शरीर स्वस्थ और कार्यक्षम रखना चाहिए।

यदि शरीर को स्वस्थ रखना है तो आहार को सन्तुलित रखना आवश्यक है। गीता ने भी योगी की चर्या में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

युक्त आहार को प्रधानता दी है। भोजन सात्त्विक और उचित मात्रा में हो। सात्त्विक आहार भी आवश्यकता से अधिक मात्रा में लेने से शरीर अस्वस्थ हो सकता है।

भोजन की मात्रा के विषय में सबके लिए निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता। उम्र, कार्य का स्वरूप, शरीर की स्थिति देखकर मात्रा निश्चित की जा सकती है। आहार की मात्रा और आहार का स्वरूप क्या हो? हम कितना और क्या खायें जिससे शरीर स्वस्थ रहकर उसमें स्फूर्ति रहे, कार्यक्षमता रहे, इसकी जानकारी जरूरी है।

हमारे शरीर के बाह्य रूप को देखकर कहा जा सकता है कि हमारा आहार उचित है या नहीं। यदि हममें जरूरत से अधिक मोटापा होता है तो समझ लेना चाहिए कि हमारे आहार की मात्रा अधिक है। सात्त्विक किन्तु अधिक आहार लेने से भी शरीर में स्निग्धता की मात्रा बढ़ती है जिससे मोटापा आता है। जरूरत से ज्यादा स्नेह बढ़ने से शरीर में वह संग्रहीत होता है। इसलिए साधक को आहार विषयक जानकारी होना आवश्यक है।

आजकल हर विषय पर अनुसंधान हो रहे हैं और वह ज्ञान साहित्य के द्वारा उपलब्ध है। आहार के विषय में विशेषज्ञों के अनुसंधानों द्वारा जो तथ्य उजागर हुए वे बड़े उपयोगी हैं। यह अनुसंधान कार्य पूरा नहीं हुआ है पर जो तथ्य सम्मुख आये उसका उपयोग कर साधक अपना आहार निश्चित कर सकता है। उचित आहार लेने से मनुष्य नीरोग रह सकता है। बिना औषधि के प्रयोग के नीरोग रहने वाले लोग अल्पसंख्यक क्यों न हों, पर हैं। मेरे मित्र धरमचन्दजी सरावगी ने ३५ साल से किसी औषधि का प्रयोग नहीं किया और ७० साल की आयु में भी एक युवक की तरह कार्यक्षम हैं। उसका मूल कारण आहार है। जो हम खाते हैं वैसा हमारा शरीर होता है। खाद्य वस्तुओं से हमारा शरीर निर्माण हुआ है। उन्हीं तत्त्वों के संग्रह से हमारा शरीर गठित होता है, वही तत्त्व शरीर को कार्यक्षम बनाये रखते हैं और शरीर-क्षय को रोकते हैं।

उचित आहार से बढ़कर नीरोग रहने के लिए कोई अच्छा उपाय नहीं है। सभी आहारशास्त्री इस पर एकमत हैं कि रोगों का प्रमुख कारण अयुक्त आहार ही है। युक्त आहार न लेने से अम्लत्व और श्लेष्म पैदा होता है जो बीमारियों की जड़ है। हमारा स्वस्थ जीवन आहार पर निर्भर है अथवा यों कहिए कि आहार पर ही जीवन निर्भर है। हम आहार जीवित रहने के लिए लेते हैं पर आहार के लिए हमारा जीवन नहीं है। जीवन तो हमारी सुप्त शक्तियाँ जगाकर पूर्णत्व प्राप्ति के लिए, आत्मा से परमात्मा और नर से नारायण बनने के लिए है। इसलिए भोजन संयम का साधन बने। भोजन स्वाद के लिए नहीं पर शरीर को स्वस्थ रखने के लिए किया जाय। आज भोजन में स्वाद का स्थान प्रमुख है, वहाँ स्वास्थ्य को स्थान दिया जाय। आज के भोजन में स्वाद को अत्यधिक महत्व दिया जा रहा है। आहार को स्वादिष्ट बनाने के लिए उपयोगी तत्त्वों का नाशकर उसे बीमारियों का कारण बनाते हैं। इसलिए संयम आवश्यक है।

चीजें स्वादिष्ट बनने पर उसके महत्वपूर्ण तत्त्व तो नष्ट होते ही हैं पर अधिक मात्रा में खाकर हम बीमारियों को न्यौता देते हैं। गांधीजी ने कहा है कि लाख में नियानवे हजार नौ सौ नियानवे लोग केवल स्वाद के लिए खाते हैं। वे इस बात की परवाह ही नहीं करते कि खाने के बाद वे बीमार पड़ जायेंगे या अच्छे रहेंगे। बहुत से लोग अधिक खा सकने के लिए जुलाब लेते हैं या पाचक चूर्ण खाते हैं।

इससे पता चल जाता है कि बहुसंख्यक लोग गलत और सही आहार के अन्तर को समझने में असमर्थ होते हैं; क्योंकि शताब्दियों से अशुद्ध और अस्वास्थ्यकर आहार करते आये हैं। हम समझ ही नहीं पाते कि स्वास्थ्यप्रद आहार कौन सा है।

आहार-शुद्धि पर जैन शास्त्रों में काफी गहराई से विचार किया गया है और साधक के लिए अनशन, अवमोदर्य, वृत्तिसंक्षेप और रस-परित्याग बताये हैं। ये सब बातें शरीर स्वास्थ्य की दृष्टि से आज का विज्ञान भी बड़ी उपयुक्त मानने लगा है।

सुप्रसिद्ध आहारशास्त्री एरहार्ड ने अपने अनुभव से रोगमुक्ति का उपाय उपवास माना है और उसने कई बार एक-एक महिने से ४५ दिनों तक उपवास किये हैं। जैनियों में उपवास की परंपरा तो बहुत बड़े पैमाने में धार्मिक रूप से चल रही है। पर उपवास के बाद पारणा कैसे किया जाय, इसका वैज्ञानिक ज्ञान बहुत कम पाया जाता है जिससे उपवास के शरीर-स्वास्थ्य के लाभ से वंचित रह जाते हैं। इतना ही नहीं, कई बार तो उपवास और तपस्या करने वाले बीमार हो जाते हैं और कभी-कभी प्राणों को भी खो बैठते हैं। जैन-समाज के संत-साध्वियों को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए कि इस विषय के आधुनिक अनुसन्धानों को समझकर पारणे की विधि में उचित परिवर्तन करें और स्वयं भी इस विषय पर अनुसन्धान और प्रयोग करें।

उपवास के बाद बहुत कम आहार लेना चाहिए। उपवास के कारण जो मल सूख जाता है, वह निकल जाय, रुककर विकृति पैदा न करे ऐसा आहार लेना चाहिए। यदि सहज मल-निष्कृति न होती हो तो एनिमा द्वारा मल-शुद्धि करानी चाहिए। तपस्या का आध्यात्मिक मूल्य तो है ही पर शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उपयोग है। इस दृष्टि से इस विषय पर अध्ययन व अनुसंधान होना आवश्यक है।

जैन-साधना पद्धति में बारह तपों का वर्णन है। उनमें बाह्यतपों के जो नाम दिये गये हैं वे भी साधना में आहार को सीमित करने के पक्ष में हैं। इस दृष्टि से उन तपों का विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

अवमोदर्य—अवमोदर्य का अर्थ है भूख से कम खाना। इस विषय में आज का विज्ञान यह कहता है कि भूख से जितने लोग मरते हैं, उससे बहुत अधिक लोग ज्यादा खाने से मरते हैं। भूख से कम खाना स्वास्थ्य के लिए हितकर है।

अवमोदर्य यानी मिताहार की उपयुक्तता वैद्यकशास्त्र ने तो बतायी ही है। क्या प्राचीन, क्या आधुनिक सभी वैद्य, डाक्टरों ने मिताहार को स्वास्थ्यप्रद व दीर्घायु देने वाला बताया है। आँकड़ों से भी यह सिद्ध हुआ है कि कम खाने वाले दीर्घायु होते हैं।

अमेरिका का डा० मैकफेडन कहता है 'भोजन के बहाने खाद्य पदार्थों का जितना दुर्व्यय होता है उससे एक-चौथाई में भी काम बड़ी आसानी से चल सकता है। अकाल में भोजन के अभाव में जितने लोग मरते हैं उससे कहीं अधिक अनावश्यक भोजन से मरते हैं।'

आस्ट्रेलिया के डा० हर्नल का कथन है कि 'मनुष्य जितना खाता है, उसका एक-तिहाई भाग भी वह पचा नहीं सकता, पेट में बचा हुआ भोजन रक्त को विषैला बनाता है जिससे अनेक रोग होते हैं। जीवन-शक्ति को भोजन पचाने का तथा आमाशय में बचे अनावश्यक भोज्य पदार्थों से निर्मित विषों से शरीर को मुक्त करने का—ऐसे दो काम करने पड़ते हैं।'

प्राचीन वैद्यकशास्त्र में भी हितभुक्, मितभुक्, ऋतुभुक् को निरोगी कहा है। हमारे आचार्यों ने भी यही बात कही है। सुप्रसिद्ध आचार्य हरिभद्र ने ओघनिर्युक्ति में कहा है—

'हियाहारा मियाहारा, अप्पाहारा य जे नरा।
न ते विज्जातिगिंच्छति, अप्पाणं ते तिगिच्छगा॥

—**ओघनिर्युक्ति** ५७८

जो हितभोजी, मितभोजी होता है उसे वैद्यों की चिकित्सा की जरूरत नहीं होती। वह अपना चिकित्सक स्वयं होता है।

आचार्य उमास्वाति ने प्रथमरति में कहा है—

कालं क्षेत्रं मात्रां, स्वात्म्यं द्रव्य-गुरु लाघवं स्वबलम्।
ज्ञात्वा योऽभ्यवहार्यः भुङ्क्ते किं भेषजैस्तस्य।

—**प्रशमरति** १३७

जो काल, क्षेत्र, मात्रा, आत्महित, द्रव्य की लघुता-गुरुता एवं अपनी शक्ति का विचार कर भोजन करता है उसे औषधि की जरूरत नहीं पड़ती।

आचार्य सोमदेव ने नीतिवाक्यामृत में लिखा है—

यो मितंभुंक्ते स बहुभुक्ते।

—**नीतिवाक्यामृत** २५/३८

जो कम खाता है, वह बहुत खाता है।

क्षमाश्रमण जिनभद्र ने बृहत्कल्पभाष्य में लिखा है—

अप्पाहारस्स न इंदियाई विसएसु संपत्तंति।
नेव किलम्मइ तवसा रसेसु न सज्जए यावि॥

अल्पाहारी की इन्द्रियाँ विषयभोगों की ओर नहीं दौड़तीं। तप करने पर भी क्लांत नहीं होती और न स्वादिष्ट भोजन में आसक्त होती है। आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १२६५ में लिखा है—

'थोवाहारो थोवभणियो य, जो होइ थोवनिद्दो य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो साधक कम खाता है, कम बोलता है, कम नींद लेता है और धर्मोपकरण की सामग्री कम रखता है उसे देवता भी नमन करते हैं।

वृत्तिसंक्षेप—वृत्तिसंक्षेप का आशय है—खाद्य वस्तुओं की संख्या कम करना। इससे स्वादविजय का लाभ होता है। आज के आहारशास्त्री भी कहते हैं कि परस्पर विरोधी गुण वाली बहुत सी चीजें स्वास्थ्य के लिए भी हानिकर हैं। बिना दूसरी वस्तु के मिलावट के एक वस्तु का आमिल आहार पाचन और स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा लाभदायक माना गया है। जैनियों में आमिल यानी आयंबिल का बड़ा महत्त्व है। जैन पुराणों में मैनासुन्दरी ने अपने पति को आयंबिल द्वारा कुष्ट रोग से मुक्ति दिलाई थी। मोनोडायट (Monodiet) एक बार भोजन में एक ही प्रकार की चीज खाना स्वास्थ्य की दृष्टि से उत्तम माना जाता है।

रस-परित्याग—रस-परित्याग में घी, दूध, मक्खन शहद तथा मद्य का त्याग आता है। आज का विज्ञान बताता है कि मक्खन, मलाई, दूध आदि का अतिसेवन हानिप्रद होता है। खासकर अधिक उम्रवालों के लिए तो हानिप्रद ही है। इसलिए रस-परित्याग का महत्व धार्मिक दृष्टि से शरीर स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। वसायुक्त पदार्थों से मोटापा आता है और खाने पर जड़ता आती है इसलिए साधना की दृष्टि से रस-परित्याग आवश्यक है। डॉक्टर भी स्निग्ध चीजों का अधिक उपयोग हानिकारक मानते हैं।

इस तरह जैन साधना में तप का स्थान महत्त्वपूर्ण है और बाह्य तपों में छः में से चार आहार विषयक हैं। शेष दो साधना की पार्श्वभूमि के रूप में आसन और एकांत साधना की दृष्टि से आवश्यक ही हैं।

इससे पता चलता है कि यदि आत्मसाधना करनी हो तो शरीर को स्वस्थ तथा साधना के लिए उपयुक्त बनाने में आहार का स्थान महत्त्वपूर्ण है और बाह्यतप द्वारा यही किया जाता है।

जिन्हें आत्मसाधना करनी है उनके लिए ऐसा आहार जो दूसरों को दुःख देने वाला, अथवा किसी के प्राण हरने वाला हो वह सर्वथा अयुक्त है। गुरु नानक ने कहा है कि कपड़े पर खून लगने पर वह गंदा होता है तो वह खून जब आहार में आवेगा तो मनुष्य को चित्तवृत्ति अवश्य ही मलिन होगी।

शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अनुसन्धान करने पर पता चला है कि मांसाहार से वनस्पत्याहार ही अधिक लाभदायक है। अमेरिका, ब्रिटेन की मेडिकल एसोशियेसनों ने अपने अनुसंधानों में बताया है कि मांस के प्रोटीन से वनस्पति के प्रोटीन अधिक स्वास्थ्यप्रद व सुपाच्य हैं।

प्राणीमात्र के प्रति मैत्री और आत्मीयता की साधना करने वाले साधक के लिए मांसाहार उचित नहीं हो सकता। स्व० डा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था—युद्ध के मूल में मांसाहार है, जब व्यक्ति प्राणी के प्रति दया गँवा देता है तो वह मनुष्य के प्रति भी दयाहीन हो जाता है।

आहार-शुद्धि का आध्यात्मिक दृष्टि से महत्व बताते हुए महात्मा गांधी ने कहा था कि 'मनुष्य खाने के लिए पैदा नहीं हुआ और न खाने के लिए जीता है, बल्कि अपने को पैदा करने वाले को पहचानने के लिए पैदा हुआ है और उसी के लिए जीता है।' इसलिए साधक का आहार ऐसा हो जो शरीर को स्वस्थ रख सके और साधना में उपयोगी हो सके। शारीरिक स्वास्थ्य के साथ स्फूर्ति होना आवश्यक है तभी साधना में प्रगति हो सकती है।

इसलिए साधक का आहार ऐसा सात्त्विक और संतुलित होना चाहिए जिससे शरीर को स्वस्थ और स्फूर्तिमय रखने के लिए उपयुक्त द्रव्य प्राप्त हो सके। खाद्य तत्त्वों में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, जल, विटामिन तथा खाद्योज व खनिज लवण उचित मात्रा में होना आवश्यक है।

जिस भोजन में कार्बोहाइड्रेट दो-तिहाई, स्निग्ध या वसा छठवाँ हिस्सा और प्रोटीन तथा खनिज व खाद्य लवण का छठवाँ हिस्सा होता है वह संतुलित भोजन समझा जा सकता है। यदि हम इन द्रव्यों के गुणों और कार्य को समझ लें तो आहार कैसे लिया जाय यह समझने में आसानी होगी।

प्रोटीन का मुख्य कार्य शरीर का पोषण, संवर्धन, रक्षण और छीजन को दूर करना होता है। यह शक्ति दूध, दही, पनीर, हरी सब्जियों से प्राप्त होती है। वसा या स्निग्धतापूर्ण चीजें शरीर में गर्मी पैदा करने में काम आती हैं। यह दूध, दही, मक्खन व तेल से प्राप्त होती है। कार्बोहाइड्रेट, जो पोषण और गर्मी देता है, गेहूँ, चावल, जौ, ज्वार, मकई तथा बाजरे से प्राप्त होती है। गुड़ और चीनी से भी मिलता है।

खनिज लवण कैलशियम, पोटेशियम, लोहा, मैग्नेशियम, फास्फोरस आदि जो हड्डियों का मज्जा व रक्त के निर्माण और संचरण में सहायक होते हैं, ये फल और साग-सब्जियों से प्राप्त होते हैं। साधक को इसका प्रमाण आहार में अधिक रखना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विटामिन शरीर को स्वस्थ रखने तथा आहार का उचित मात्रा में वितरण कर रोगों से रक्षा करने वाला द्रव्य है। यह हरा धनिया, गाजर, मक्खन व सब्जियों से, गेहूँ आदि अन्नों के चोकर तथा निंबू, संतरा, आंवला आदि से प्राप्त होता है।

किससे कितनी केलरी मिलती है उसका वर्णन निम्नलिखित है—

१ ग्राम वसा या स्नेह	से प्राप्त होती है	९ केलरी
१ ग्राम कार्बोहाइड्रेट	,,	४ केलरी
१ बड़ी कटोरी दाल पतली	,,	१०० से ११० केलरी
१ टुकड़ा ब्रेड (२० ग्राम)	,,	५० केलरी
१ संतरा	,,	४० केलरी
१ आम	,,	१०० केलरी
१ चम्मच शकर (चाय का चम्मच)	,,	२० केलरी
१ ग्राम प्रोटीन	,,	४ केलरी
१ फुलका चुपड़ा हुआ	,,	१०० केलरी
३/४ कटोरी या ३० ग्राम सूखा चावल	,,	१०० केलरी
१ ग्लुकोज बिस्किट	,,	४० केलरी
१ केला	,,	४० से ५० केलरी
१ औंस हरी सब्जी	,,	१५ से २० केलरी
१ औंस मलाई रहित दूध	,,	२० केलरी

१०० ग्राम अनाज या दाल (गेहूँ चावल, अरहर, बाजरा, चना, मूंग आदि) ३५० केलरी

सामान्यतया साधक के भोजन में प्रोटीन (५० से ७० ग्राम) २८० केलरी, स्नेह (४० ग्राम) ३६० केलरी, कार्बोहाड्राइट (३०० ग्राम) १२०० केलरी, होना चाहिए जो लगभग ५० साल की उम्र वाले और सामान्य परिश्रम करने वाले के लिए पर्याप्त होता है।

साधक के लिए कितने केलरी आहार की दैनिक आवश्यकता होगी? यदि वह किशोर और युवा है तो २३०० केलरी, प्रौढ़ ५० से ६० वर्ष की उम्र का हो तो २००० केलरी, और वृद्ध ६० से ७५ वर्ष उम्र का हो तो १५०० केलरी। इसमें भी जो शारीरिक श्रम नहीं करते उन्हें इससे भी कम केलरी आहार पर्याप्त हो सकता है और जो अधिक शारीरिक श्रम करते हैं वे इससे कुछ अधिक ले सकते हैं। कहाँ से कितनी केलरी मिल सकती है यह निम्न-लिखित तालिका से पता लग सकता है :

सामान्यतया यह आहार साधक के लिए उपयुक्त हो सकता है। दूध बिना शकर का १ प्याला, १ खाकरा, या १०० ग्राम फल सवेरे अथवा ब्रेड १ स्लाइस।

दोपहर को दो फुलके, दाल १ कटोरी (लगभग आठ बड़े चम्मच), उबली सब्जी १५० से २०० ग्राम, कचूबर ५० ग्राम, छाछ १ ग्लास या दही एक कटोरी।

शाम को ४ बजे १ दूध का ग्लास या फल का रस। शाम को ६ बजे २ फुलके या १ कटोरी भात, उबली सब्जी, दाल, कचूबर, छाछ या दही, घी-तेल १ चम्मच से अधिक न हो।

इस आहार से १५०० केलरी मिल सकती हैं और प्रोटीन, वसा, विटामिन तथा खनिज द्रव्य उचित मात्रा में मिल सकते हैं। यह संतुलित आहार है। जितनी केलरी अधिक बढ़ानी हों आहार की मात्रा बढ़ाने से मिल सकती है। मिर्चें-मसाला, शकर आदि त्याग सकें तो अच्छा।

इस आहार से शरीर स्वस्थ रहकर ध्यान में स्फूर्ति रह सकती है। यदि गरिष्ठ आहार होता है तो ध्यान में तन्मयता नहीं होती। या तो ध्यान में ग्लानि आती या नींद; जबकि ध्यान में सजग और अप्रमत्त रहना आवश्यक होता है।

साधना की सफलता से लिए स्वस्थ शरीर होना आवश्यक है और शरीर को स्वस्थ्य और कार्यक्षम रखने के लिए आहार का स्थान महत्त्वपूर्ण है। इसलिए जिन्हें साधना करनी हो उन्हें भोजन की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

★★★

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org